Received: Nov '22
Revised: Dec '22
Accepted: Dec '22

© 2022 by the authors. This article is an open access article distributed under the terms and conditions of the Creative Commons Attribution (CC BY) license (https://creativecommons.org/licenses/by/4.0/).

MEERA'S ROLE AS A WOMAN PHILOSOPHER IN THE MEDIAEVAL PERIOD
मध्यकाल में स्त्री विमर्शकार के रूप में मीरा की भूमिका

Bhawana[1] and Siddharth Rao[2]
[1]Assistant Professor, Department of History, Govt. N.M. College, Hanumangarh, Rajasthan, India
[2]Assistant Professor, Department of Political Science, Govt. N.M. College, Hanumangarh, Rajasthan, India
E-mail: [1]bhawanabeni@gmail.com, [2]siddharthrao775@gmail.com

ABSTRACT

At present, women's discussion is the main focus point of thinking in society, which is the search for a woman's identity. Meera Bai's role as a women's philosopher was very important in the mediaeval period. She raised her voice against the shackles of the then patriarchal society and wished for rights for women by breaking the wrong traditions and taboos that had been going on for centuries. Meera has been struggling for female identity in the mediaeval period. In the presented research paper, an attempt has been made to analytically study the role of Meera as a woman philosopher in the mediaeval period.

वर्तमान में स्त्री विमर्ष समाज में चिन्तन का मुख्य केन्द्र–बिन्दु है जो कि एक स्त्री की अस्मिता की खोज है। मध्यकाल में स्त्री विमर्शकार के रूप में मीरा बाई की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण रही है। उसने तत्कालीन पुरूषसत्तात्मक समाज की बेड़ियों के खिलाफ आवाज उठायी और सदियों से चली आ रही गलत परम्पराओं और वर्जनाओं को तोड़कर स्त्रियों के लिए अधिकारों की कामना की। मीरा मध्यकाल में स्त्री अस्मिता के लिए संघर्षरत रही है। प्रस्तुत शोध पत्र में मध्यकाल में स्त्री विमर्शकार के रूप में मीरा की भूमिका का विश्लेषणात्मक अध्ययन करे का प्रयास किया गया है।

वर्तमान में स्त्री विमर्ष, महिला सषक्तीकरण आदि शब्द समाज में चिन्तन के मुख्य केन्द्र–बिन्दु हैं। स्त्री विमर्ष एक स्त्री की अस्मिता की खोज और विष्लेषण है और उसकी मानवीय गरिमा को प्रतिष्ठित करने का एक प्रयास है। स्त्री विमर्ष अपनी मूल चेतना में स्त्री को पराधीन बनाने वाली पितृसत्तात्मक व्यवस्था का विश्लेषण है और इसी क्रम में यह स्त्री को निम्न दर्जा दिये जाने की जांच पड़ताल करता है और विवाह संस्था, समाज, धर्म और न्याय में स्त्री विरोधी भूमिका को समाज के समक्ष प्रकट करता है। आज आधुनिक नारी प्रत्येक क्षेत्र में अपनी स्वतंत्रता का परचम लहरा रही है किन्तु अभी भी बहुत सी गांठे अनसुलझी सी ही है। स्त्री विमर्ष इन्हीं गांठो को खोलने के प्रयास में प्रयासरत है। यहां प्रष्न यह उठता है कि क्या मध्ययुग में जन्मी भक्ति आंदोलन की कवयित्री मीरा आधुनिक स्त्री विमर्ष का अंग हो सकती है ? विष्लेषण करने पर पता चलता है कि आज का स्त्री–विमर्ष, स्त्री चेतना को मुखर करती आवाज वही है जो मीरा के काव्य में सर्वत्र बिखरी हुई है। मीरा का काव्य केवल कृष्ण के प्रति अगाध प्रेम की अभिव्यक्ति ही नहीं है वरन् इसमें तत्कालीन दमनकारी, सामन्ती और पितृसत्तात्मक समाज को चुनौती देते हुए नारी का स्वतन्त्र चित्रण है। मीरा के काव्य की प्रमुख विषेषता उसका भक्ति भाव और विरह वेदना है, परन्तु इन सबके बीच मीरा के काव्य में जो वेदना है वह तत्कालीन समाज का चित्रण हमारे सामने प्रस्तुत करती है। उसके काव्यों में हम उसके प्रेम निवेदन को, उसके मन की पीड़ा को, उसके मन में चल रही पितृसत्तात्मक समाज के प्रति वितृष्णा को और स्त्रियों की दीन–हीन स्थिति को स्पष्टतः ही महसूस कर पाते हैं।

मध्यकालीन भारत में उस समय स्त्री की स्थिति आज की स्त्री से भिन्न थी। उसकी उड़ान के लिए स्वच्छन्द आकाष नहीं था बल्कि वह अनेक सामाजिक मर्यादाओं में बंधी हुई और कुरीतियों की षिकार थी, परन्तु मध्यकाल में मीरा बाई वह नाम है जो स्वयं अपने नाम से इन सबको एक नवीन पहचान देती है। एक स्त्री के लिए इतना कर पाना मध्ययुग में ही नहीं आज भी इतना आसान नहीं है। स्त्री–विमर्ष के प्रसंग में स्त्री–लेखन के सम्बन्ध में प्रभा खेतान का मत है कि ''अपने लेखन में स्त्री अपने भीतर के भय को जीत ले, लोग क्या कहेंगे, घर वाले नाराज होंगे, बवंडर होगा, इन ख्यालों से निजात पा ले।'' प्रभा खेतान को 21वीं सदी में यह सलाह स्त्री विमर्ष से सम्बन्धित सभी लेखकों को देनी पड़ रही है जबकि मीरा ने तो 16वीं सदी में ही मेवाड़ में निर्भीक होकर स्वयं के निर्णय लिये और अपने साहित्य में उजागर किये।

स्त्रियों से सम्बन्धित बहुत सारे प्रतिमान हमारे समय में प्राचीन काल से ही चले आ रहे हैं और इन्हीं प्रतिमानों के आस–पास ही हमारे समाज में स्त्री की छवि को गढ़ा गया है। एक स्त्री के लिए पतिव्रता के आदर्ष के साथ–साथ सहनषीलता, त्याग और धैर्य के गुणों को धारण करना उसके स्त्री–धर्म के लिए आवष्यक माना गया है और यही अपेक्षा उससे आज भी की जा रही है। वैधव्य जीवन स्त्री के लिए अभिषाप माना जाता रहा है और मध्यकाल में समाज में सती–प्रथा भी विधमान थी। समाज में इन्हीं नियमों के फलस्वरूप स्त्री की स्वतंत्रता को नियंत्रित किया गया था। राजपूत समाज और विषेषकर राजघराने की स्त्रियों के लिए तो नियम और भी कठिन थे। मीरा जो सामन्ती कुलीन समाज से सम्बन्धित थी उस युग में जब एक राजघराने की कन्या का महल

की अटारी पर चढ़ना भी अपराध समझा जाता हो और घर की देहरी लांघना असभ्य माना जाता था उस समय मीरा यह दहलीज लांघ कर साधु–सन्तों की संगति में यह कहने का साहस करती है कि ''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई। आज जबकि समस्त विष्व में स्त्री–विमर्ष सभी क्षेत्रों में मुखरित हो रहा है, स्त्री अपनी पहचान व अस्मिता के लिए संघर्ष कर रही है, जागरूक हो रही है तो हम देखते हैं कि आज से वर्षों पूर्व मीरा के काव्य में स्त्री–विमर्ष की सषक्त अभिव्यक्ति दिखायी देती है। मीरा ने अपने काव्य के माध्यम से समाज को निर्भीकता, निडरता, दृढ़ विष्वास और नारी स्वातन्त्रय जैसे जीवन मूल्य भेंट किये।

मीरा मेड़ता के शासक राजा रतन सिंह की पुत्री थी और कृष्ण भक्ति के बीज बचपन से ही उसमें रूढ़ थे। बाल्यावस्था से ही मीरा के निर्णय दृढ़ और अटल थे। मीरा उस समय के सामन्ती समाज से है जहां पर्दा–प्रथा, बाल–विवाह, बहुपत्नी विवाह, सती–प्रथा, जौहर, वैधव्य जैसे नियम कुल की मान–मर्यादा के रूप में दृढ़ता से स्थापित थे। स्त्रियों को पितृसत्तात्मक व्यवस्था में कोई भी अधिकार प्राप्त नहीं थे। ऐसे में मीरा का कृष्ण के प्रति प्रेम, उसको पति रूप में स्वीकार करना मीरा की दृढ़ता को प्रकट करता है।

मीरा आरोपित विवाह सम्बन्ध को अस्वीकार करती है और स्त्री द्वारा स्वयं पुरूष का वरण करने की स्वतन्त्रता की पक्षधर है। वह विवाह के प्रष्न पर बार–बार कहती है, ''माई री मैं सुपणा में श्याम वरणो।'' इतना ही नहीं वह तो सीधे–सीधे सपाट शब्दों में यही भी कहती है–

''मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई,
जाके सर मोर मुकुट मेरो पति सोई।''

परन्तु जब सामन्ती व्यवस्था में उसके स्वर दब कर रह जाते हैं और मीरा का विवाह राजा भोजराज के साथ सम्पन्न हो जाता है तब भी वह अपने विचारों को प्रकट करने से नहीं चूकती है और कहती है कि –

''ऐसो वर को क्या करूं, जो जीवे और मर जावे।
वर वरण्यो रघुनाथ को, म्हारो चुडलो अमर हो जावे।''

यहां भी मीरा दूसरों पर निर्भर रहने वाली स्त्री का मिथक तोड़ कर स्वतन्त्र निर्णय लेती नई स्त्री छवि को गढ़ती है। जब जीवन मीरा का है तो उसे परिचालित करने का और निर्णय का अधिकार दूसरों को क्यों ? इसी क्रम में जब उसके पति की असामयिक मृत्यु हो जाती है तो राजपूती परम्परा के अनुसार वैधव्य जीवन जीने से और सती होने से इन्कार कर देती है। परन्तु वह अपमाने सहते हुए भी इस पर डटी रहती है और कहती है ''भजन करस्यां सती न होस्यां, मन मोह्यो घण गयी।'' इस कारण जब मीरा पर अत्याचार बढ़ते हैं तो वह राजसत्ता को चुनौती देते हुए कहती है –

''सिसोद्यो राणे म्हारो काई करसी,
राणा थारे देस में साथ नहीं लोग बसे सब कुडो।''

मीरा के इस व्यवहार के कारण जब पारिवारिक सम्बन्धों में तनाव उत्पन्न हुआ और मीरा को प्रताड़ित किया जाने लगा तब भी मीरा साहसपूर्वक कहती है कि वह राजा के आदेषों और महलों के अनुषासन की अनुपालना नहीं कर सकती है। राजसत्ता, पुरूष वर्चस्व और गलत सामाजिक परम्पराओं का मीरा ने अपने पदो ंके माध्यम से खुलकर विरोध किया है। मीरा के द्वारा स्त्री की समाज द्वारा स्थापित अनावष्यक लज्जा का परित्याग कर अपने द्वारा चुने गये मार्ग पर चलने व उस समय नारी समाज के लिए सामाजिक, धार्मिक अधिकार प्राप्त करने की पहल की गयी। इसके लिए वह किसी का भी विरोध करने से भयभीत नहीं होती है। एक पद में राणा को चुनौती देते हुए मीरा कहती है

राणो जी थे जहर दियो म्हें जाणी।।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसत बारांवाणी।
लोकलाज कुल काण जगत की, दई बहाय जस पाणी।
अपने घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी।
सब सन्तन पर तन मन वारों, चरण कंवल लपटाणी।
मीरां को प्रभु राखि लई है। दासी अपनी जाणी।।

(मीरा की पदावली)

मीरा तत्कालीन पुरूष सत्तात्मक समाज द्वारा बनाये राजमहलों के बन्धनों को भी मानने से इन्कार करती है। इसके अतिरिक्त मीरा ने तत्कालीन समाज में स्त्री–पुरूष के कार्य विभाजन की जो सीमा थी उसे भी लांघ कर चुनौती दी। वह घर–बार से बाहर निकलकर सार्वजनिक जीवन में प्रवेष करती है साधु सन्तों के बीच रहती है और उनके साथ यात्रा करती है जिसे समाज 'मर्यादा' तोड़ने के कारण 'विद्रोही' के रूप में परिभाषित करता है। साधारण समाज की क्या बात करे, साधु समाज भी इसको स्वीकार करने को तैयार न था। ''चौरासी वैष्णवन की वार्ता'' में वल्लभ सम्प्रदाय के भक्तों की प्रषंसा की गयी है किन्तु उसमें मीरा बाई को बहुत भला–बुरा कहा गया है। ऐसे में मीरा के लिए इस राह पर चलना अत्यन्त कठिन था परन्तु वह उस युग की स्त्रियों के लिए आदर्ष स्थापित करती है और कहती है

''माई सांवरे रंग राची।
साज सिंगार बांध पग घुंघरू लोक लाज तज वाची।''

अर्थात् यह मीरा का दृढ़ संकल्प ही था कि जब मैंने अडिग होकर कुछ फैसला किया है तो मैने लोकलाज की परवाह करना ही त्याग दिया है। इसने तथाकथित पितृसत्तात्मक समाज की नींव तक हिला डाली और उन्हें यह महसूस होने लगा कि नारी मात्र उनके हाथ की कठपुतली नहीं है वह स्वयं अपने निर्णय लेने में सक्षम है। इतना ही नहीं वे समाज की परवाह न करते हुए रविदास

को अपना गुरू बनाती है जो कि जाति से चमार थे। मीरा की इसी विद्रोही चेतना को स्पष्ट करते हुए डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते हैं कि '' घर–द्वार, कुल समाज के बंधन तोड़कर सड़क पर उतरी, चमार को गुरू बनाती, जात–पात को ठेंगा दिखाती मीरा क्या पांच सौ साल की बुढ़िया लगती है या आज कल की जवान छोरी उसने खुद तो अपने बंधन की श्रृंखला तोड़ी ही, ऊंच–नीच का जग–धंधा भी चौपट कर दिया। एक साथ स्त्री–विमर्ष और दलित–विमर्ष की बैठकी से कम नजारा नहीं है यह।'' रविदास को गुरू बनाने के सन्दर्भ में श्रोत्रिय जी ने टिप्पणी की है,– ''मीरा ने संयोगवष नहीं, साभिप्राय रैदास को गुरू बनाया होगा, क्योंकि उसके भीतर की विद्रोही चेतना और बहती करूणा को अध्यात्म के क्षेत्र में इससे कम मंजूर न था।''

मीरा का गृहत्याग भले ही बुद्ध और महावीर स्वामी की तरह जगत का परित्याग कर निर्वाण प्राप्त करने की ओर कदम नहीं था, वरन् उसमें जीवन के उल्लास को जानने की उत्सुकता है। उसमें संसार को त्यागने का भाव नहीं है वरन् वह तो एक संकुचित दायरे से निकल कर ज्ञानार्जन करना चाहती है। मीरा अपने पदो के माध्यम से घर से बाहर स्त्री की अस्मिता और प्रतिष्ठा को स्वीकृति दिलाने के लिए खड़ी है और इसके लिए वह संतो और बुद्धिजीवियों से तर्क वितर्क करने में भी पीछे नहीं हटती है। वृन्दावन जाने पर वह 'जीव गोस्वामी' से तर्क–वितर्क करती है जिन्होंने कभी स्त्री का मुख न देखने की प्रतिज्ञा ली हुई थी और उनसे प्रष्न पूछती है कि ''एक पुरूष सकल जग माही, दूजी नार सोहाई।'' मीरा कभी अपने कठिनाईयों से घबराती नहीं है, मार्ग के अवरोधों से वह दिल खोलकर टक्कर लेती है, जूझती है और अपना रास्ता वह स्वयं बनाती है। मध्यकाल में मीरा समाज–सुधार की और नारी विमर्ष की वह आवाज है जो न केवल आवेग के साथ आती है अपितु मध्यकाल की तमाम वर्जनाओं को अपने साथ बहाकर ले जाती है और समाज में एक नये दृष्टिकोण की नींव रखती है।

वर्तमान में स्त्री–विमर्ष का ढिंढोरा पीटने वालों को यह समझना होगा कि मध्यकाल में बिना स्त्री–विमर्ष के नाम के मीरा स्त्री नेतृत्व की वह आवाज है जिसे समाज चाह कर भी दबा नहीं पाया। मीरा ने स्त्री की आत्माभिव्यक्ति हेतु, आत्मस्वाभिमान हेतु तत्कालीन संकुचित समाज के सामने न केवल संघर्ष किया अपितु उस रूढ़िवादी समाज से अकेली लड़ी भी और उस लड़ाई को सार्थक मुकाम तक भी पहुंचाया। मीरा उस युग की तमाम वर्जनाओं कों नकार देती है और यह घोषणा भी करती है कि ''आधे मीरा एकली रे, आधे राणा की फौज'' या तन की आस कबहु नहि कीन्हीं ज्यों रण माही सूरौ।''

मीरा के समस्त पदों में उसके साथ होने वाले दोषपूर्ण व्यवहार का वर्णन है किन्तु वह सबसे निपटने को संकल्पित खड़ी है। जैसे एक पद में वह कहती है ''लोग कहै मीरा भई बावरी सासु कहे कुलनासी रे, विष का प्याला राणाजी भेज्या पीवत मीरा हांसी रे, पग घुंघरू बांध मीरा नाची रे, मैं तो नारायण की आपहि हो गई दासी रे।'' मीरा की यह घोषणा ही तत्कालीन समाज के ठेकेदारों के लिए सबसे बड़ी चुनौती बन जाता है और जितना वे इस आग को बुझाने का प्रयास करते है वह ओर भी तेजी से फैलती है।

मध्ययुगीन सामन्ती समाज की जकड़न में बंधी मीरा ने कभी लोकतान्त्रिक व्यवस्था नहीं देखी थी उसने कभी उस सम्पन्न स्त्री को नहीं देखा जो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक थे उनके खिलाफ आवाज उठाये। उसके काल में स्त्री को केवल एक 'मादा' के रूप में अधिकार प्राप्त थे और वह दो मुट्ठी अनाज के लिए भी दूसरों पर आश्रित थी। ऐसे में यह सम्पूर्ण परिदृष्य एक दम से नहीं बदलता है। स्त्रियों के लिए अधिकारों की कामना करना कोई एक स्थान से दूसरे स्थान तक छलांग लगाने के समान नहीं होता वरन् यह तो एक पूर्ण श्रृंखला है जिसमें एक के बाद एक कड़ी जुड़ती चली जाती है। यही एक कड़ी मीरा के द्वारा भी जोड़ी गयी। निर्भीक मीरा ने अपनी राह स्वयं बनाई। परम्परागत स्त्री की छवि से अपनी एक भिन्न पहचान बनाई। मीरा उस युग की तमाम वर्जनाओं को तोड़कर आत्म प्रसार का निर्णय लेती है और इससे भी बड़ी बात यह है कि वह अपने निर्णयों पर अडिग रहती है जो उसके चारित्रिक गुणों की दृढ़ता को सिद्व करता है और अपने इन्हीं निर्णयों के सकारात्मक और नकारात्मक प्रभावों के लिए वह किसी ओर पर दोषरोपण नहीं करती है। मीरा की इसी स्त्री चेतना को रेखांकित करते हुए प्रभाकर श्रोत्रिय लिखते है–

''हाथ में तम्बूरा, दिल में प्रेम और कंठ में गीत लिये मीरा चलती फिरती आग की लपट थी। आग जब क्षार (खार) को जलाती है तो जो भी क्षार है, सबको जलाती है। क्रान्ति की यह बड़ी परिभाषा आज तक हमारी समझ में नहीं आयी। जब हाषिए पर पड़ी स्त्री स्वाधीनता की पुकार करती है तो हाषिए में जो भी पड़ा है उसकी आजादी मांगती है लेकिन हमारा दलित और स्त्री–विमर्ष परस्पर नहीं जुड़ सका, एक साथ खड़ा नहीं हुआ और अपने भीतर ही खण्ड खण्ड हुआ पड़ा है जबकि मीरा के भीतर सम्पूर्ण स्त्री–समाज और सारे दलित साथ मिलकर अपनी लड़ाई लड़ रहे हैं।''

श्रोत्रिय जी के अनुसार मीरा की यह निर्भयता और दीवानगी एक तरह से नारी स्वातन्त्रय का ही नहीं, वरन् मनुष्य की स्वाधीनता का शंखनाद है। भले ही इसका केन्द्र भक्ति हो, लेकिन उसमें सारे लक्षण आजादी के हैं। मीरा स्वातन्त्रय चेतना, विद्रोही भावना और समाज के ठेकेदारों के खिलाफ साहस हमें आज भी प्रभावित करता है। मीरा स्त्री को दोयम दर्जे का प्राणी मानने का न केवल विरोध करती है अपितु स्त्री को एक जीवन्त मानवीय इकाई समझने का संस्कार भी देती है। वह स्त्री–संत होकर भी अन्य पुरूष साधु–सन्तों का विरोध सहती रहती है और हमें यह पता चलता है कि स्त्री का

सामन्य जीवन जितना कठिन है उतना ही कठिन है स्त्री का सन्त होना। पुरूषोचित्त मानसिकता के ठेकेदारों को मीरा तब भी निंदनीय लगती थी और आज भी प्रष्न चिह्न ही लगती है क्योंकि उनकी नजर में स्त्री लौकिक तो छोड़िए पारलौकिक प्रेम के लिए भी स्वतन्त्र नहीं हो सकती। उस समय में आज की तरह नारी मुक्ति आन्दोलन या नारी संगठन तो थे नहीं जिसमें सभी स्त्रियों को मिलकर आवाज उठाने का मौका मिल सके या वह विरोध प्रदर्षन कर सके। इसलिए आज के समय में स्त्री विमर्ष पर विचार करते हुए मीरा पर चिन्तन करना अत्यन्त प्रासंगिक है। मीरा मध्यकाल में स्त्री अस्मिता के लिए संघर्षरत रही है। उसके व्यक्तित्व में तत्कालीन नारी समाज की व्यथा और उनकी समस्याएं अन्तर्निहीत है। मीरा का उन्मुक्त स्वर में शक्ति सम्पन्न सामन्ती वर्ग से यह पूछना ही रूढ़िग्रस्त समाज के मुंह पर तमाचा है कि ''राणा थे क्यांने राखों म्हांसू बैर?'' मीरा का यह मुखर स्वर नारी स्वाभिमान का प्रतीक है जिससे पीढ़ियों को मार्गदर्षन मिलता है।

पं. गिरिमोहन गुरू '' नगर श्री'' मीरा की प्रषस्ति में लिखते हैं –

नारियों की शक्ति की पहचान है मीरा।
पीढ़ियों के लिए गौरव ज्ञान है मीरा।।
भाव की भीनी सुरभि से युक्त है
भक्ति कानन का सुमन अम्लान है मीरा।
जो विरोधों में खड़ी सिर तानकर
एक साहस की नई पहचान है मीरा
ऊर्जा नवषक्ति महिला वर्ग महिला वर्ग की
एक युग की प्रेरणा है, प्राण है मीरा।''

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1- अनामिका, स्त्रीत्व का मानचित्र
2- मीराबाई कीी सम्पूर्ण पदावली राम किषोर शर्मा, सुजीत कुमार शर्मा
3- प्रभाकर श्रोत्रिय, कवि परम्परा, तुलसी से त्रिलोचन तक
4- गिरिमोहन गुरू ''नगर श्री'', मीरायन, अंक 3, सितम्बर 2015
5- डॉ. हेमा रंगन, ''संत मीरा बाई का रचना–संसार : एक स्त्रीवादी विमर्ष'', जनवरी 2011
6- डॉ. पल्लव, ''मीरा : एक पुनर्मूल्यांकन, आधार प्रकाषन
7- मीरा का काव्य– प्रो. विष्वनाथ त्रिपाठी
8- तिवारी – भगवानदास : मीरा की भक्ति और उसकी काव्य साधना का अनुषीलन, साहित्य भवन (प्रा0) लिमिटेड, इलाहाबाद